ओ३म्
आर्य समाज सान्ताक्रुज
ARYA SAMAJ SANTACRUZ
स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

वर्ष-8
अंक-11
मुम्बई
नवम्बर 2017
मूल्य-रु.9/-

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती

आगामी कार्यक्रम

आर्य समाज सान्ताक्रुज के **७४ वें स्थापना दिवस** के शुभ अवसर पर **वरिष्ठ सदस्य सम्मान समारोह** आगामी १० दिसम्बर २०१७ को प्रात: ९.०० से १२.०० बजे तक होगा।

दिनांक २६ से २८ जनवरी २०१८ में **वार्षिकोत्सव** मनाया जायेगा।

ब्रह्मा एवं वक्ता **आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय** (दिल्ली)

परमात्मा के दर्शन

शकुन्तला आर्या

एक बार गुरु नानक देव बनारस में गंगा के तट पर डेरा डाले थे। उन्होंने एक ब्राह्मण को छोटे-छोटे बरतनों में चावल डालते हुए देखा। यद्यपि उस समय दिन था, फिर भी उसने पास में चिराग जलाकर रखा था। गुरु नानक ने उससे पूछा- 'यह आप क्या कर रहे हैं?' ब्राह्मण ने कहा- 'मैं यह चीज़ें पूर्वजों को अर्पित कर रहा हूं।'

नानक देव ने जब पूछा कि उसने दिन में भी दीपक क्यों जला कर रखा है, तो उसने उत्तर दिया- 'स्वर्ग जाने के लिये। उनके मार्ग में अगर अंधकार हुआ तो यह दीया ही उन्हें रास्ता दिखाएगा।' उनका उत्तर सुनकर नानक बोले-'मित्र! क्या जब तुम सोते हो और भिन्न-भिन्न स्थानों के स्वप्न देखते हो, तो क्या मार्ग देखने के लिये तुम्हें चिराग की आवश्यकता होती है?' ब्राह्मण ने कहा-'नहीं।'

'तब तो निश्चित ही तुम्हारा यह चिराग तुम्हारे पूर्वजों के लिए व्यर्थ है। यह शरीर ही चिराग है और इन्द्रियों से उत्पन्न तेल से यह जलता है। तुम परमात्मा की उपासना से इसे जलाओ और इससे जो ज्वाला उठेगी, वह इस दीप को जला देगी। फिर तुम्हें खुद-ब-खुद परमात्मा के दर्शन हो जाएंगे।

सत्य और असत्य

एक बार गुरु नानक देव लाहौर से सियालकोट पधारे। नगर के बाहर कब्रिस्तान में एक फकीर सैयद गीस रहा करता था। एक दिन वह बस्ती के लोगों से किसी कारण नाराज हो गए और वहां रहकर नगर का सत्यानाश करने के लिये कई प्रकार के साधन इत्यादि करने लगे। गुरु नानक को इस बात का पता चला तो वह फकीर के पास गए और बोले- 'सैयद जी! पहले ये तो बताइये कि आप यह क्या कर रहे हैं?'

सैयद- 'महाराज, इस नगर में एक सज्जन ने मुझे अपना पुत्र देने को कहा था, परंतु उसने अपना वचन पूरा नहीं किया। इस नगर के लोग बड़े झूठे है। इसके कारण मैं बहुत दुखी हूँ, इसलिये इनको सजा देना चाहता हूँ, और इसी बात के लिये चेष्टा भी कर रहा हूं।' फकीर की बात सुनकर गुरु नानक बोले- 'अच्छा बैठो, थोड़ी देर में इसका निर्णय करते हैं।'

फिर उन्होंने मरदाना को दो पैसे देकर कहा कि जाओ और बाज़ार से झूठ खरीदकर ले आओ। मरदाना चला गया। काफी देर के बाद वह वापिस आया, क्योंकि लोग उसकी बात पर हंसते थे। आकर कहने लगा कि उसको कोई झूठ नहीं बेचता। गुरु जी ने मरदाना को फिर आज्ञा दी कि एक बार फिर जाओ, कहीं-न-कहीं मिल जाएगा।

मरदाना फिर निकल पड़ा और घूमते हुए भाई पूजा के लड़के के पास पहुँचा। लड़का बड़ा बुद्धिमान था। उसने पैसे ले लिए काग़ज़ के एक टुकड़े पर लिख दिया- '**मरन सत्य है और जीना झूठ**'। काग़ज़ का वह टुकड़ा लेकर मरदाना गुरु जी के पास आया और गुरु चरणों में उसे रख दिया। गुरु जी ने वह टुकड़ा सैयद गीस को दिखाते हुए कहा-'देखो, इस नगर में ऐसे लोग भी रहते हैं। फिर आप नगर के सब लोगों को झूठा कैसे कह सकते हैं?'

पवित्र हाथ

एक बार की बात है सिक्खों के दसवें गुरु श्री गोविंद सिंह जी महाराज कुछ नवयुवकों को उपदेश दे रहे थे। नवयुवक जिज्ञासावश उनसे तरह-तरह के प्रश्न पूछ रहे थे और गुरु जी उनके प्रश्नों के यथोचित उत्तर दे रहे थे। जब प्रश्नों का उत्तर देते-देते गुरु जी का गला सूखने लगा तो उन्होंने कहा-'तुम में से कोई मुझे अपने पवित्र हाथों से पानी पिलाए। मुझे तेज प्यास लग रही है'। इस पर एक सुंदर युवक उठा और लोटे में शीतल जल ले आया। जब वह लोटे से गिलास में पानी उड़ेलने लगा तो गुरु जी की दृष्टि उसके हाथों पर पड़ी। गुरु जी ने उससे पूछा- 'क्यों युवक, तुम्हारे हाथ इतने सुंदर एवं कोमल कैसे हैं? और क्या यह पवित्र भी हैं?' इस पर युवक ने उत्साहित होकर जवाब दिया- 'गुरु जी, मैं सेठ का पुत्र हूं, मेरे घर में कई नौकर-चाकर हैं, मैं ऐसा कोई काम नहीं करता जो मेरे हाथ खराब कर दें। मैं इनका बहुत ध्यान रखता हूँ। इसीलिये ये सुंदर हैं। मैं इन्हें गंदगी से दूर रखता हूं, अत: आप इन्हें पवित्र भी कह सकते हैं'।

यह सुनकर गुरु जी गंभीर स्वर से बोले-'युवक, मैं यह पानी नहीं पी सकूँगा, क्योंकि यह अपवित्र हाथों से लाया गया है'। इस पर युवक ने दुखी स्वर में पूछा- 'ऐसा क्यों गुरु जी?' गुरु जी बोले- 'पवित्र हाथ वे होते है जो दूसरों की सेवा और श्रम करते है'। जनता के कल्याण के लिए कार्य करते है। लेकिन तुमने कभी कोई मेहनत का काम किया ही नहीं है, अत: मेरे लिये तुम्हारे हाथ अपवित्र हैं'।

गुरु जी की बात सुन युवक की आंखें खुल गई। वह गुरुदेव के चरणों में झुककर बोला- 'आज से मैं अपने सारे काम स्वयं किया करूंगा और कुछ न कुछ ऐसा काम भी अवश्य करूंगा जो जनहित के लिये हो'। गुरुदेव मुस्करा कर बोले- 'जिस दिन तुम ऐसा करोगे, मैं सहर्ष तुम्हारे हाथों का पानी पी लूंगा'।

हर चेहरे में आपका चेहरा

एक बार बैसाखी के पर्व पर आनंदपुर में काफी दूर-दूर तक सिक्ख लोग गुरु गोविंद सिंह जी के उपदेशों को सुनने आए थे। सब लोगों के मन में एक उत्साह था। तभी अचानक गुरु जी को समाचार मिला कि मुगलों की एक बड़ी सेना ने हमला कर दिया है। सिख लोग गुरु जी के निर्देश पर केसरिया बाना पहनकर मैदान में उतर आए। सिक्खों ने बीच रास्ते में ही मुगलों की खूब पिटाई की। युद्ध के दूसरे दिन गुरु जी के कुछ शिष्यों ने शिकायत कर दी कि कन्हैया नाम का एक सिक्ख शत्रु-सेना के घायलों को भी पानी पिला रहा है।

गुरु गोविंद सिंह ने कन्हैया को बुलाया और उससे पूछा 'क्या तुमने शत्रु-सेना के घायल सिपाहियों को पानी पिलाया?' कन्हैया ने बड़ी विनम्रता से कहा- 'जी हां गुरु जी, यह बात बिल्कुल सच है। मैं तो युद्धभूमि में घायल सभी जरूरतमंद लोगों को पानी पिला रहा था चाहे वे सिक्ख हों या मुगल क्योंकि मुझे वह न तो सिख दिखाई दे रहे था और न ही मुगल। मुझे तो हर चेहरे में आपका ही चेहरा दिखाई दे रहा था।'

संतोष का धन

काशी में गंगा-तट पर संत रविदास जी की झोपड़ी थी। वहां वह अपनी पत्नी के साथ रहते थे और बाहर बैठ जूते गांठते थे। जो कुछ मिल जाता, उसी से वे गुजर-बसर कर लेते थे। एक दिन एक साधू वहाँ आया। उसने रविदास की गरीबी देखकर अपनी झोली से एक पत्थर निकाला और कहा, 'यह पारस पत्थर है जो लोहे को सोने में बदल सकता है।' यह कहते हुए उसने लोहे के एक दुकड़े को सोना बनाकर दिखा दिया।

रविदास जी ने कहा, 'महाराज, अपनी इस नियामत को अपने ही पास रखिए। अपनी मेहनत से मुझे जितना मिल जाता है, काफ़ी है। पसीने की कमाई का अपना आनंद है।' परंतु साधू ने जब बहुत आग्रह किया, तो रविदास जी ने कहा- 'महाराज! इसे राजा को दे दीजिए, जो इतना गरीब है कि हमेशा पैसा मांगता रहता है, या फिर किसी सेठ को दे दीजिए।' साधू अपना सा मुँह लेकर रह गया। वस्तुत: संतोष ऐसा धन है, जिसके सामने संसार का सबसे बड़ा वैभव भी तुच्छ हो जाता है।

❏❏❏

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ९ अंक ११ (नवम्बर-२०१७)

- **दयानंदाब्द : १९४, विक्रम सम्वत् : २०७४**
- **सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११८**

प्रबन्ध संपादक : **चन्द्रगुप्त आर्य**
संपादक : **संगीत आर्य**
सह संपादक : **संदीप आर्य**
कार्यकारी संपादक : **विनोद कुमार शास्त्री लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.**

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
परमात्मा के दर्शन	२
सम्पादकीय	३
सफलता के महत्त्वपूर्ण सूत्र	४-५
महर्षिस्तव:	६
याज्ञवल्क्य द्वारा जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति..	७
स्वामी दयानन्द की महानता	८-१०
सब पाशों से मुक्त होकर हम सुकृत	११
मानवोचित गुणों की पुकार	१२
धर्म और सत्य	१३-१६
आर्य समाज सान्ताक्रुज के ७४ वें.....	१६

सम्पादकीय

कर्मप्रधान समाज

महर्षि की महति कृपा से वैदिकधर्म से विमुख हो चुकी आर्य जाति (जो आज स्वयं को तथाकथित हिन्दू कहती है) को इन्होंने पुनः उसके मूल धर्म और संस्कृति की ओर प्रेरित किया था। वैदिक धर्म के त्रैतवाद के सिद्धांत, निराकार ईश्वर की सर्वव्यापकता, कर्मपोषित वर्णव्यवस्था को अपनाकर आर्य समाज ने राष्ट्र में क्रांति कर दी थी। इसी क्रांति के परिणाम स्वरुप आर्य समाज ने स्वतंत्रता आंदोलन, सामाजिक सुधार, शिक्षा, अंतरजातीय विवाह, जन्मपोषित वर्णव्यवस्था का निषेध, आदि अनेकों क्रांतिकारी कार्य किये। आर्य समाज की एक अलग पहचान बन चुकी थी। समाज में प्रतिष्ठा व नेतृत्वक्षमता आर्य समाजियों के हाथों में आ गयी थी। किन्तु वैदिक धर्म के सिद्धान्त के अनुरुप उसमें सरलता, सादगी, ईमानदारी, एषणाओं से दूर रहने के विचार एवं त्यागी और परोपकारी वृत्ति के कारण राष्ट्र की मुख्यधारा से उसने अपने को अलग रखा। बस यहीं से कर्मप्रधान आर्य समाज सिर्फ ज्ञान तक सीमित रह गया। हमारा मनसा वाचा कर्मणा एक नहीं रहा। ज्ञान कर्म उपासना की सीढ़ियों पर चलने का संकल्प लेकर हम ज्ञान से आगे सीढ़ियां चढ़ना मानो भूल गये।

आर्य समाज की शक्ति को जन्मपोषित वर्ण व्यवस्था मानने वाले आर्य समाज का मुखौटा ओढ़कर क्षीण करने का प्रयास कर रहे हैं। साथ ही कुछ शीर्ष नेतृत्व पर कब्जा कर आर्य समाज को अपने अनुसार ढालने के षड्यंत्र में लगे हैं। कोई अपनी राजनीतिक इच्छा की पूर्ति के लिये आर्य समाज के मंच का दोहन कर रहा है। आर्य समाज मानो एक क्लब हो गया है, चंदा भरो, सदस्य बनो और अपना स्वार्थ सिद्ध करो। कोई दान देकर ट्रस्टी बन जाता है और सत्ता संपत्ति का दोहन करने लग जाता है। संक्षेप में ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज आर्य समाज और अन्यों में कोई फर्क नहीं रह गया है। बगल में मंदिर में घंटी बज रही है और समाज में हवन हो रहा है। जैसे मंदिर में कर्मकांड के नाम पर दोहन हो रहा है वैसा समाज में भी पनप रहा है। महर्षि के बनाये सिद्धान्तों से आर्य समाज में ही समझौता हो रहा है। यह सब इसीलिये क्योंकि हम आज कर्मप्रधान नहीं रहे।

आओ! दयानंद के सिपाहियों, उठो और आर्य समाज को कर्मप्रधान बनाओ, वर्ना कहीं ऐसा न हो जाये कि तथाकथित भ्रमित वैदिक धर्मियों में हमारा भी नाम जुड़ जाए।

वैदिक सिद्धान्त के अनुरूप ज्ञानपूर्वक कर्मप्रधानता ही आर्य समाज को बचा सकती है।

संगीत आर्य
9323573892

सफलता के महत्त्वपूर्ण सूत्र

सुश्री कन्चन आर्या

प्रिय बच्चो,

शुभाशीष!

इस पत्र में हम कुछ ऐसे सामान्य गुणों पर चर्चा करेंगे, जो आपके व्यक्तित्व (Personality) के विकास के लिए तथा प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक हैं। अनेक बार यह देखने में आता है कि आप जैसे बच्चे हर क्षेत्र में परिश्रम तो खूब करते हैं, परन्तु सफल नहीं हो पाते। कुछ लोगों का व्यक्तित्व एवं बातचीत करने का ढंग प्रभावशाली (impressive) नहीं होता। उनके व्यवहार और बातों में आत्म-विश्वास (Self confidence) की कमी झलकती है। परिणामस्वरूप उन्हें अनेक क्षेत्रों में असफलता प्राप्त होती है। अत: सफल व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए कुछ आवश्यक गुणों और विशेषताओं की चर्चा मैं इस पत्र में करना चाहती हूँ। प्यारे बच्चो, किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए आप जैसे युवक और युवतियों को इन निम्नलिखित गुणों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए:-

१) **दूरदृष्टि :** 'दूरदृष्टि' का अर्थ है कि किसी भी काम को करते समय या योजना बनाते समय वर्तमान के साथ-साथ भविष्य में भी उस कार्य का अपने ऊपर तथा अन्य लोगों पर होने वाले प्रभाव व परिणाम भली भाँति सोच लेना। इसे ही **'दूरदृष्टि'** कहते हैं। हरेक कार्य या व्यवहार के पक्ष (लाभ = merits) और विपक्ष (हानि = demerits), दोनों को देख-सोचकर ही उसे करने या न करने का निश्चय करना चाहिए।

२) **जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना :** यह दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। जब तक हमें यह ज्ञात नहीं होगा कि हमें कहाँ जाना है, तब तक हम ठीक दिशा में आगे बढ़ ही नहीं सकते। अपने लक्ष्य के आधार पर ही व्यक्ति कार्य आरम्भ करता और श्रम करता है। उदाहरण के लिए, जिसका लक्ष्य क्रिकेट का सफल खिलाड़ी बनना है, उसके लिए अधिक समय खेलना आवश्यक है, जबकि डॉक्टर बनने की इच्छा रखने वाले को अधिक समय पढ़ने में बिताना आवश्यक है। अपने जीवन के मुख्य लक्ष्य को सामने रखकर आपको दैनिक, साप्ताहिक या मासिक समयावधि (Period) निर्धारित करके उसके अनुसार अपने लक्ष्य की छोटी-छोटी मंजिलें पार करते जाना होगा। इस प्रकार, क्रमश: अपने मुख्य लक्ष्य की पूर्ति के लिए आगे बढ़ते रहना चाहिए। बच्चों, जीवन का लक्ष्य चुनते समय एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि किसी के भी दबाव में आकर लक्ष्य निर्धारित न करें। जिस क्षेत्र या विषय में आपकी रुचि और योग्यता हो, आपका लक्ष्य भी उसी से सम्बन्धित होना चाहि क्योंकि ऐसे लक्ष्य को पूरा करने में ही सफलता मिलती है। हाँ, कोई दूसरा योग्य और समझदार व्यक्ति अपनी सलाह अथवा निर्देश दे, तो उसे ध्यानपूर्वक सुनें। उसके पश्चात् उस पर सोच-विचारकर आप स्वयं निर्णय ले सकते हैं। अपनी रूचि और योग्यता न होने पर भी यदि आप दूसरे के दबाव में आकर अपना उद्देश्य निर्धारित कर लेंगे, तो उसमें पूर्ण सफलता मिलने की संभावना कमी ही रहती है। ऐसा लक्ष्य चुनने पर प्राय: बच्चे या तो बीच में ही ऊब कर कार्यक्षेत्र छोड़ देते हैं या उसमें उतने सफल नहीं हो पाते, जितना रुचिकर विषय में हो सकते थे। तब वे न इधर के रहते हैं, न उधर के। अत: यदि आप अपने सपनों को साकार होते देखना चाहते हैं, तो आपको ठीक दिशा का चयन करना होगा।

३) **दृढ़ संकल्प :** एक बार सोच-समझ कर लक्ष्य चुन लेने के बाद उसको पूरा करने का **दृढ़ संकल्प** ले लेना चाहिए। दृढ़ संकल्प एक **ऐसा हथियार है, जो मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर कर सकता है।** लक्ष्य को पूरा करने के प्रयत्न में कितनी भी कठिनाइयाँ या बाधाएँ क्यों न आयें, दूसरे लोग तुम्हें गिराने का कितना ही यत्न क्यों न करें, किसी की परवाह न करते हुए उद्देश्य प्राप्ति के लिए दृढ़ता और उत्साह से लगातार प्रयत्न करते जाना ही **दृढ़ संकल्प** कहलाता है। बच्चों, यदि आपका संकल्प दृढ़ नहीं होगा, तो थोड़ी-सी मुसीबत-आने पर ही आप अपना लक्ष्य छोड़ने को तैयार हो जायेंगे। कभी एक चुनेंगे, तो कभी दूसरा। इस प्रकार, आप कभी आगे नहीं बढ़ पायेंगे। आपको इस दोहरे रास्ते की भटकन से बचकर रहना होगा। एक ही उद्देश पर दृढ़ रहने से आपका मार्ग साफ-सुथरा, स्पष्ट और अन्धकार रहित होने लगेगा। अत: आप अपने रास्ते पर डटे रहना सीख लें। जो विद्यार्थी विघ्नों के डर से अपना लक्ष्य ही नहीं चुनते या उस ओर बढ़ना ही आरम्भ नहीं करते, उन्हें **सबसे 'निम्न'** (worst) कोटि का माना जाता है; जो घबराकर बीच में ही छोड़ देते हैं, 'मध्यम' (mediocre) कोटि का; और जो बार-बार मुसीबतें आने पर भी लक्ष्य को बीच में न छोड़कर आगे बढ़ते जाते हैं, उन्हे 'उत्तम' (best) कोटि का माना जाता है। अत: आपका मनोबल ऐसा होना चाहिए, जो हर हार को जीत में बदल दे।

जिस प्रकार शान्त समुद्र में चलने वाले नाविक को कभी भी कुशल (expert) नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार केवल अनुकूल परिस्थितियों में सफलता प्राप्त करने वाले को भी कोई वीर या दृढ़-संकल्पी नहीं कह सकता। **वीर और दृढ़-संकल्पी तो वे हैं, जो बार-बार बाधाएँ या कठिनाइयाँ आने पर भी हिम्मत नहीं हारते, बल्कि लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते ही जाते हैं।** बच्चों, ऐसा देखा गया है कि एक बार असफल रहने पर प्राय: व्यक्ति प्रयत्न करना छोड़ देते हैं या उत्साह कम होने से उनका प्रयत्न ढीला पड़ जाता है। परन्तु **बार-बार असफल होने पर भी घबराहट के स्थान पर दुगुने उत्साह से प्रयत्न**

करते जाना ही दृढ़ संकल्प कहलाता है। याद रखो, **प्रत्येक असफलता एक नया अनुभव सिखाती है** और उस **अनुभव से प्राप्त छोटी-छोटी सफलता भी जीवन की अन्तिम सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है।** हर सुबह-शाम अपने लक्ष्य को दोहराते हुए अपने कर्त्तव्य का निश्चय करते रहें और उसका दृढ़तापूर्वक पालन करें। बच्चो, किताबी कीड़ा बनने मात्र से ही सफलता नहीं मिलती, उसके साथ अपना संकल्प और मनोबल ऊँचा बनाये रखना भी आवश्यक है। सदा इस बात का ध्यान रहे कि हम प्रतिक्षण एक परीक्षा से गुजर रहे हैं। **जिनका मनोबल और संकल्प ऊँचा होता है, वे हर परीक्षा में पास होते हैं। तुम्हारे पास भी वही मनोबल है। उसे पहचानें और आगे बढ़ते जायें।**

४) **सकारात्मक दृष्टिकोण (positive attitude):** प्रिय बच्चो! यह सफलता का ऐसा महत्त्वपूर्ण सूत्र है, जो केवल विद्यार्थी जीवन में ही नहीं, अपितु जीवन के हर क्षेत्र में अत्यन्त उपयोगी है। अपने जीवन में कभी भी नकारात्मक विचार मत आने दें। इस बात को सदा याद रखें कि **हम अपने मन में जिस प्रकार की भावना या विचार रखते हैं, उसी प्रकार की तरंगें (vibrations) और वातावरण हमें अनायास प्राप्त होते चले जाते हैं।** यदि आपका दृष्टिकोण नकारात्मक होगा, तो आपके साथ ऐसी घटनायें घटेंगी और आपका सामना ऐसे लोगों से होगा, जो आपको हतोत्साहित करेंगे या असफलता की और ले जायेंगे। मेरा तो इतना कहना है कि यदि किसी कारणवश आपको प्रारम्भ में असफलता मिले, तो उसे भी आप सकारात्मक रूप में ही लें और उत्साहित होकर आगे बढ़ते जायें। **जहाँ नकारात्मक विचार सफलता को भी असफलता में बदल देते हैं, वहीं सकारात्मक दृष्टिकोण व्यक्ति को उत्साहित कर उचित मार्ग पर चलने और अनुकूल वातावरण प्रदान करने में अवश्य सहायक होता है।** इस विषय में विस्तार से मैं अगले पत्र में लिखूँगी।

५) **कठोर परिश्रम:** प्रिय बच्चो, जब आपने दृढ़तापूर्वक अपने जीवन का लक्ष्य चुन लिया है और उस लक्ष्य एवं लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आपमें सकारात्मक विचार हैं, तो अब आपको जितना सम्भव हो सके, अधिक से अधिक **श्रम** करना आरम्भ कर देना चाहिए। जब तक लक्ष्य को न पा लें, चैन से न बैठें। एक कवि ने जीवन-यात्री को इसी प्रकार की प्रेरणा देते लिखा है- **'बटोही ठंडी सांस न ले, कंटीले पथ पर बढ़ता जा, पाँव तेरे छिल ही जायें भले, बटोही ठंडी सांस न ले।'** बच्चों परिश्रम करते हुए यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि वह तुम्हें अपने लक्ष्य की ओर बढ़ाता चले। इसके लिए जो भी कार्य या मेहनत करें, उसमें निम्नलिखित चार सूत्रों को अवश्य ध्यान में रखें:-

१) ईमानदारी, २) समझदारी, ३) जिम्मेदारी, और **४) उत्साह।** उदाहरण के लिए, आप पढ़ने के लिए पुस्तक लेकर बैठे तो हैं, परन्तु ध्यान खेलने में या किन्हीं अन्य विचारों में गया हुआ है, तो यह पढ़ाई के साथ **ईमानदारी नहीं,** अपितु बेईमानी है। आप पुस्तक लेकर ध्यान से पढ़ तो रहे हैं, परन्तु बैठे हैं एक ऐसी भीड़ में जहाँ सभी अलग-अलग समूहों में अपने-अपने विषयों पर चर्चा कर रहे हैं। ऐसे में तो पढ़ाई में व्यवधान जरूर होगा। अत: यह **समझदारी** से पढ़ाई करना नहीं है। इसके बाद तीसरे सूत्र का ध्यान रखें कि जो भी काम कर रहे हैं, उसमें पूरी **जिम्मेदारी की भावना** होनी चाहिए। अपनी किसी गलती या असफलता के लिए दूसरे को जिम्मेदार ठहराना, आपको अपने मार्ग से भटका सकता है। क्योंकि यदि आपके मन में पूरी जिम्मेदारी की भावना नहीं होगी, तो आप सदा दूसरों पर निर्भर रहेंगे और अपनी गल्ती को दूसरे पर थोंपेंगे। इससे आप अपने उस दोष मे मुक्त न हो पायेंगे। और आप यह याद रखें कि दोषपूर्ण परिश्रम लक्ष्य प्राप्ति में साधक नहीं, बाधक ही होगा। **अत:एक जिम्मेदार (responsible) व्यक्ति की तरह लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना आवश्यक है।**

आपके श्रम की सफलता का अगला सूत्र 'उत्साह' है। उत्साहित रहकर श्रम करने से व्यक्ति अपने लक्ष्य की ओर तीव्र गति से बढ़ता जाता है। इसके विपरीत, **यदि मन में उत्साह न हो, तो गति बहुत धीमी हो जाएगी।** नई और सफल युक्तियाँ भी नहीं मिल पायेंगी। व्यक्ति शीघ्र हो ऊब (bore) सकता है, परिणामत: लक्ष्य से गिरने की सम्भावना हो सकती है। **'उत्साहहीन पुरुष कायरता का मार्ग चुनते हैं, मृत्यु का मार्ग चुनते हैं जबकि उत्साही पुरुष उसे चैलेंज समझकर आगे बढ़ जाते हैं और मंजिल पाते हैं।'** आजकल 'गणितीय एल्गोरिथम' का निर्माण कर रहे कुमार सौरभ इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं। पटना की आई-आई. टी. की परीक्षा में लगातार दो बार असफल रहने पर भी वे हिम्मत नहीं हारे। अत: आप सभी अपने जीवन में आलस्य को छोड़कर, (ऊपरलिखित चारों सूत्रों को मन में रखकर) अपनी सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक मेहनत करने में जुट जाओ।

आप सब अच्छी तरह जानते ही हैं कि जीवन में छोटे से लेकर बड़े तक सभी कार्य परिश्रम से ही सिद्ध होते हैं। बिना मेहनत के, केवल मात्र सोचना शेखचिल्ली के सपने के समान ही है। आप शेर को ही देखो, कितना बलवान प्राणी है, परन्तु भोजन के लिए उसे भी मेहनत करनी पड़ती है। बैठे-बिठाये कोई भी जानवर उसके पास नहीं आ जाता कि मुझे खाकर अपनी भूख मिटा लो। अत: जितना सम्भव हो सके परिश्रम करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लो। यह जीवन का बहुमूल्य समय है, जिसमें आप अधिक से अधिक योग्यता और ज्ञान का संचय कर सकते हैं। और इसी के आधार पर आप भविष्य में सुख-सुविधायें प्राप्त कर पायेंगे। मेरे प्यारे बच्चो! बेंजामिन फ्रैंकलिन के इन शब्दों को सदा याद रखो कि **''अज्ञानी होना उतनी शर्म की बात नहीं है, जितनी कि किसी कार्य को ठीक ढंग से सीखने की इच्छा का न होना।''**

महर्षिस्तवः

धर्मदेवविद्यावाचस्पति

एकोऽपि सन् निर्भयवीरवर्यः, समस्तपाखण्डमखण्डयद् यः।
सत्यव्रतश्रेष्ठममुं महान्तम्, ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ।।२८।।

जिन निर्भय वीरवर ने अकेले होते हुए भी समस्त पाखण्डों का खण्डन किया, उन सत्यव्रतधारियों में श्रेष्ठ महान् ऋषि दयानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ।

न यं कृतान्तोऽप्यशकद् विजेतुं, यस्याग्रतो बद्धकरः स तस्थौ।
योगाग्निना दग्धसमस्तदोषम्, ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ।।२९।।

जिसको मृत्यु भी न जीत सकी परन्तु वह जिसके आगे हाथ बाँधे खड़ी रही, जिसने योगाग्नि से समस्त दोषों को दग्ध कर दिया था, ऐसे ऋषि दयानन्द को मैं प्रमाण करता हूँ।

विषं प्रदायाप्यपकारकर्त्रे, योऽदाद् धनं तस्य हि रक्षणार्थम्।
प्रेम्णा स्वशत्रूनपि मोहयन्तम्, ऋषिं दयानन्दमहं नमामि ।।३०।।

विष देने वाले अपकारी को भी जिसने उसकी रक्षार्थ धन दिया, प्रेम से अपने शत्रुओं को भी मोहित करने वाले ऐसे ऋषि दयानन्द को मैं नमस्कार करता हूँ।

यद्यङ्गुलीरप्यरयो दहेयुस्तथापि यास्यामि न तत्र चिन्ता।
इत्यादिवाक्यं समुदाहरन्तं, तं श्रीदयानन्दमहं नमामि ।।३।।

चाहे विरोधी मेरी अंगुलियों की पोरियों को भी जला दें फिर भी मैं वहाँ (जोधपुर) अवश्य जाऊँगा, कहते हुए दयानन्द ऋषि को मैं नमस्कार करता हूँ।

दयाया यः सिन्धुर्निगमविहिताचारनिरतो,
विलुप्तं, सद्धर्मं, पुनरपि समुद्धर्तुमनिशम्।
दिवारात्रं येते, यतिवरगुणग्रामसहितो,
दयानन्दो योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते।।३२।।

जो दयासागर थे, वेद-प्रतिपादित आचरण में तत्पर थे, विलुप्त सद्धर्म की रक्षा के लिए रात-दिन जिन्होंने यत्न किया, ऐसे शुद्ध चरित्र यतिवर दयानन्द योगी की जय हो।

यदीयं वैदुष्यं, श्रुतिविषयकं लोकविदितं,
यदीयं योगित्वं, कलियुगजनेष्वस्त्यनुपमम्।
हितार्थं सर्वेषाम्, इह निजसुखं यस्तु विजहौ,
दयानन्दो योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते ।।३३।।

जिन की वेद विषयक विद्वत्ता लोक प्रसिद्ध है, जिन का योगित्व कलियुग में अनुपम था, सब के हित के लिए जिन्होंने अपना सुख त्याग दिया, ऐसे विमल चरित्र वाले योगी दयानन्द की जय हो।

स्वराज्यं* सर्वेभ्यः, परमसुखदं शान्तिजनकं,
स्वदेशीयो धार्यः, सकलमनुजैर्वस्त्रनिवहः।
स्वराष्ट्रं चाराध्यं, दिशिदिशि दिशन् भीतिरहितो,
दयानन्द योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते।।३४।।

स्वराज्य परम सुख और शान्ति देने वाला होता है, सब लोगों को स्वदेशी वस्त्र ही धारण करना चाहिए। इस प्रकार अपने राष्ट्र की आराधना या सेवा सदा करनी चाहिए। निर्भय हो कर जिन्होंने सब दिशाओं में उत्तम भावों का प्रचार किया ऐसे विमल चरित्र वाले योगी दयानन्द की जय हो।

जनाः सर्वे नूनं, भुवनजनितुः पुत्रसदृशाः,
अतोऽन्योन्यं स्नेह; सकलमनुजानां समुचितः।
न कोऽप्यस्पृश्यो ना, इति विलमभावं प्रचुरयन्,
दयानन्दो योगी, सरलहृदयोऽसौ विजयते ।।३५।।

संसार के सब मनुष्य जगदुत्पादक एक ईश्वर के पुत्र हैं, इसलिए सब को परस्पर स्नेह उचित है, कोई भी अस्पृश्य नहीं। इस प्रकार के विमल भाव के प्रचारक सरल- **हृदय दयानन्द योगी की जय हो**

=:=:=:=:=:=:=: ●●● =:=:=:=:=:=:=:

विचार शक्ति का चमत्कार

(पूरा जीवन पूरे दिन के समान है- एक विचार)

प्रिय पाठकों । हमारे शरीर का एक सैल पूरे शरीर के समान होता है। हमारा शरीर पूरे ब्रह्मांड के समान होता है तथा एक दिन हम जो व्यतीत करते है वह पूरे जीवन के व्यतीत करने के समान होता है। यह लेख एक प्रतीकात्मक रुप से लिखा जा रहा है जिसकी उपयोगिता हर व्यक्ति के लिए अलग अलग प्रकार से हो सकती है। आइये विचार करते हैं कैसे? प्रातः काल सूर्योदय से ठीक पहले संध्याकाल में पौ फटते ही सृष्टि की रचना हुई और मनुष्य नींद से जागा। यह मानव के जन्म होने के समान हुआ और उसने आँखें खोली। उस समय उसके दिमाग में जो प्रथम विचार आया तो यूँ समझिये कि यह उसके जीवन का प्रथम विचार हुआ सूर्योदय से एक घंटे तक सूर्य की रश्मियां नरम नरम सेक दे रही होती है। इस समय बच्चे के दिमाग में जो डालो वह ग्रहण कर लेता है। दिमाग भी विकसित हो चुका होता है। यह करीब पांच वर्ष तक की आयु का समय समझिये। तत् पश्चात् दोपहर बारह बजे तक का समय कुमारावस्था का समय है जहां बच्चा कुमारावस्था को पूर्ण कर यौवनावस्था में प्रवेश कर रहा होता है। यह करीब अठ्ठारह वर्ष तक की आयु का समय समझिये। दोपहर बारह बजे से सायं चार बजे तक का समय पूर्ण यौवन का समय है। सूर्य भी अपनी पूर्ण क्षमता में होता है। यह करीब आठरह से चालीस वर्ष तक का समय माना जाएगा। अब सायंकाल का समय होने जा रहा है। चार बज चुके हैं। दिन ढलने को है और जीवन का भी ढ़लाव शुरु हो चुका है। सायं छह बजे तक दिन परिपक्व हो चुका है और मनुष्य मी वयोवृद्ध या वरिष्ठता को प्राप्त कर रहा होता है। यह करीब साठ वर्ष की आयु का समय समझा जाएगा। इसमे मनुष्य वरिष्ठ नागरिक कहलाया जाने लगता है। अब सेवा निवृत्ति का समय आ पहुचा है और मनुष्य बुढ़ापे की ओर अग्रसर ही रहा कै। जिसे हम रात्र के आरम्भ का समय भी कह सकते हैं। अब सायं छह से आठ तक के संध्याकालीन समय में मनुष्यने दिन भर में क्या कार्य किये और उनका का परिणाम हो सकता है उस पर विचार करता है। यानि अपने पूरे जीवन का निरिक्षण करता है। इसमे किये हुए कार्यो का भोग करने में पूरी तरह स्वक्षम होता है। यह करीब साठ से सत्तर वर्ष की आयु का समय समझिये। शेष अगले अंक में।...

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त
उपप्रधान, आर्य समाज, वाशी

याज्ञवल्क्य द्वारा जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति का विचार

डॉ. भवानीलाल भारतीय

एक बार राजा जनक के निकट याज्ञवल्क्य गए। उस दिन उन्होंने प्रथम ही यह विचार बना लिया था कि आज वे स्वयं कोई रहस्यचर्चा नहीं चलाएँगे। उस समय राजा अपनी यज्ञशाला में था, अत: याज्ञवल्क्य भी वहीं पहुँच गए। प्रथम तो दोनों में कर्मकाण्ड के किसी विषय पर चर्चा होने लगी। राजा जनक के साथ हुए इस संवाद से महर्षि को प्रसन्नता हुई और उन्होंने राजा को वर प्रदान किया कि वे उनसे यथेच्छ प्रश्न पूछ सकते हैं। अब राजा ने उनसे प्रथम प्रश्न इस प्रकार किया... ''हे महर्षि, आप यह बताएँ कि इस शरीररूपी नगरी में जिस पुरूष या आत्मा का निवास है, वह किस ज्योति से अपने शारीरिक क्रिया-कलाप का संचालन करता है? उसे प्रकाश प्रदान करनेवाली कौन-सी शक्ति है?'' उत्तर में महर्षि ने कहा- ''देखो, यह पुरुष आदित्य-ज्योतिवाला है। कारण कि सूर्य के प्रकाश में ही यह इधर-उधर जाता है, उपयुक्त स्थान पर बैठता है, अपने कार्यालय जाता है, पुन: स्वस्थान पर लौटकर आता है।'' राजा ने कहा, ''आपका कथन यथार्थ है।''

पुन: जनक पूछते है- ''अब आप यह बताएँ कि जब सूर्य अस्त हो जाता है तो यह पुरुष किस ज्योति से सहायता लेकर अपने कामों में प्रवृत्त होता है?'' इसके उत्तर में ऋषि ने चन्द्रमा का नाम लिया और कहा- ''रात्रि में चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की रोशनी की सहायता से यह अपनी रात्रिचर्या करता है।'' अगला प्रश्न था कि जब सूर्य भी अस्त हो जाए और कृष्ण पक्ष के कारण चन्द्रमा भी न निकले तो आत्मा को अपने सांसारिक कार्यों में सहायता देनेवाली ज्योति कौन-सी है? इसका उपयुक्त उत्तर देते हुए महर्षि ने अग्नि को ही वह ज्योति बताया। रात को जंगलों में एकाकी विचरण करनेवाले व्यक्ति अग्नि की सहायता से प्रकाश प्राप्त करते है। राजा ने इसी प्रश्नश्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए पूछा कि यदि आदित्य, चन्द्र और अग्नि इन तीनों की ही ज्योति उपलब्ध न हो तो यह पुरुष क्या करेगा, किसकी सहायता लेगा? महर्षि का उत्तर था- ''उस समय वह वाणी की सहायता लेगा। यह अनुभव भी प्रत्यक्ष ही है। जैसे घोर अंधकार में जब हाथ को हाथ नहीं सूझता, उस समय यदि कोई हमें पुकारे तो हम वाणी द्वारा ही अपनी उपस्थिति जतलाते है, और कोई दूसरा सुदूर स्थान से हमें बुलाए तो हम उसकी आवाज का अनुसरण कर उस तक पहुँच जाते हैं। इस स्थिति में यह वाणी ही प्रकाश का काम देती है।'' राजा को इस उत्तर से भी सन्तोष हुआ।

उसका अगला प्रश्न था कि यदि कोई ऐसी स्थिति भी आ जाए कि सूर्य, चन्द्र, अग्नि तथा वाणी भी न रहे, तब इस पुरुष को किस प्रकाश से सहायता मिलेगी? उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा- ''तब तो आत्मा ही इस पुरुष (जीवात्मा) का प्रकाश होगा। आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, अत: वह अपने आत्मिक ज्ञान से ही आने, जाने, बैठने, उठने आदि के बाह्य कर्मो का सम्पादन कर लेगा, उसे किसी अन्य की सहायता की जरूरत नहीं रहेगी।''

अब जनक ने आत्माविषयक जिज्ञासा की। यह आत्मा अन्तत: है क्यो? महर्षि का उत्तर था- ''वह विशिष्ट चैतन्य, प्राणों को संचालित करनेवाला, हृदय का जीवन-स्वरूप, शरीर में सर्वत्र अपनी सत्ता को प्रकट करनेवाला सूक्ष्म तत्त्व ही आत्मा है। वह कभी मर्त्यलोक की कामना करते हुए भौतिक शरीर में आता है तो कभी उससे पृथक् होकर परमात्मा के परमधाम मोक्ष को प्राप्त करने की भी इच्छा करता है। यथार्थत: यह स्वकर्मों के अनुसार नाना योनियों में जन्म लेता हुआ भ्रमण करता है। जब इसके कर्म एवं उनके फल समाप्त हो जाते हैं तो यह समाधि के तुल्य स्थिरता पाता है और मृत्यु का उल्लंघन कर परमानन्द को प्राप्त करता है। पुन:यही आत्मा मोक्षावधि के समाप्त होने पर पुन: जन्म लेता है, शुभाशुभ कर्म करता है; किन्तु यदि वह आत्मज्ञान, साथ ही परमात्मात्व को जान लेता है तो पापकर्मों को त्यागकर पुन: उच्च गति पाता है... **तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति** (यजुर्वेद ३१/१८)...

''सामान्यतया जीव की दो ही गतियाँ हैं- यह लोक तथा परलोक। इस लोक (संसार) में रहकर वह संसारी जीवन व्यतीत करता है, परन्तु इस लोक को छोड़कर अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार परलोक (या अन्य जन्मों) को भी प्राप्त करता है। किन्तु इसकी एक तीसरी गति भी है जिसे मोक्ष कहा जाता है। उस अवस्था में वह कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त होकर द्रष्टा की-सी स्थिति पा लेता है। उपनिषद में अन्यत्र कहा है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।। मुण्डक. २।२८

उस परमोत्कृष्ट परमात्मा के दर्शन पा लेने पर इस जीव के हृदय की गाँठें खुल जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं। कर्मों के बंधन भी क्षीण हो जाते है। यह अवस्था तो मुक्ति की ही है जिसमें पूर्णतया स्वातन्त्र्य-स्वराज्य-लाभ करता हुआ यह आत्मा स्वरूप में ही लीन रहता है। यह इस आत्मा की ज्योतिर्मय अवस्था है।....

''उस मुक्तावस्था में भौतिक पदार्थों के न रहने पर भी वह मुक्त जीव संकल्प-मात्र से उन सुखों का अनुभव कर लेता है। न रथ है, न रथों को हाँकने वाले घोड़े हैं और न मार्ग है, तथापि मुक्त जीव संकल्पों से ही इनकी रचना करता है और यथेच्छ भ्रमण करता है। वहाँ आनन्द, आमोद-प्रमोद आदि नहीं है। तालाब, सरोवर और नदियों के न होने पर भी मानो दिव्य जलों में स्नान कर दिव्य आनन्द की अनुभूति करता है।...

''यह तेजोमय् पुरुष दिव्य हंस के तुल्य है। जैसे कोई पक्षी अपने घोंसले में नियत काल तक रहता है, उसी प्रकार यह हंस स्वरूप जीव भी शरीररूपी नीड़ में नियत काल तक निवास करता है, पुन: इस घोंसले से बाहर निकलकर अपने अनिवाशी, प्रकाशमय स्वरूप को चीन्हकर यथेच्छ विचरण करता है। मुक्तात्मा के लिए कोई प्रतिबंध नहीं है।''

शेष पृष्ठ १० पर.

स्वामी दयानन्द की महानता

इन्द्र विद्यावाचस्पति

यहाँ महर्षि दयानन्द और उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर प्रकट की गई सम्मतियों का संकलन किया गया है, जिससे उनकी महत्ता का दिग्दर्शन-मात्र हो सकता है-

दयानन्द का चरित्र मेरे लिए ईर्ष्या और दु:ख का विषय है।....

महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे।

उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा है।

– महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी

मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।

.... मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदरपूर्वक श्रद्धांजलि देता हूँ, जिसने देश की पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया। **– डॉ. रवीन्द्रनाथ ठाकूर**

वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा, और मनुष्य व संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का वीर विजेता और इस प्रकार मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति-सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है। इन दो शब्दों का, जो कि हमारी भावनाओं के अनुसार एक -दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, मिश्रण ही दयानन्द की उपयुक्त परिषाभा प्रतीत होती है। उसके व्यक्तित्व की व्याख्या की जा सकती है- एक मनुष्य, जिसकी आत्मा में परमात्मा है, चर्म-चक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन-तत्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति घड़ सके तथा कल्पना को क्रिया में परिणत् कर सके। वह स्वयं दृढ़ चट्टान थे। उनमें दृढ़ शक्ति थी कि चट्टान पर घन चलाकर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सकें। प्राचीन सभ्यता में विज्ञान के गुप्त भेद विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ को अर्वाचीन विद्याओं ने ढूँढ़ लिया है, उनका परिवर्तन किया है और उन्हें अधिक समृद्ध व स्पष्ट कर दिया है, किन्तु दूसरे अभी तक निगूढ़ ही बने हुए हैं। इसलिए दयानन्द की इस धारणा में कोई अवास्तविकता नहीं है कि वेदों में विज्ञान -सम्मत तथा धार्मिक सत्य निहित हैं।

वेदों का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे अंतिम पूर्ण अभिप्राय कुछ भी हो, किन्तु इस बात का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उसने सर्वप्रथम वेदों की व्याख्या के लिए निर्दोष मार्ग का आविष्कार किया था। चिरकालीन अव्यवस्था और अज्ञान-परम्परा के अन्धकार में से सूक्ष्म और मर्म-भेदी दृष्टि से उसी ने सत्य को खोज निकाला था। जंगली लोगों की रचना कही जाने वाली पुस्तक के भीतर उसके धर्म-पुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुंजी प्राप्त की है, जो युगों से बन्द थे और उसने पटे हुए झरनों का मुख खोल दिया।

... ऋषि दयानन्द के नियम-बद्ध कार्य ही उनके आत्मिक शरीर के पुत्र हैं, जो सुन्दर, सुदृढ़ और सजीव हैं तथा अपने कर्त्ता की प्रत्याकृति हैं। वह एक ऐसे पुरुष थे जिन्होंने स्पष्ट और पूर्ण रीति से जान लिया था कि उन्हें किस कार्य के लिए भेजा गया है। **– श्री अरविंद घोष**

ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में दुर्द्धर्ष शक्ति, अविचलता तथा सिंह-पराक्रम फूँक दिए हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुषसिंह उनमें से एक था जिन्हें यूरोप प्राय: उस समय भुला देता है जब कि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है; किन्तु एक दिन यूरोप को अपनी भूल मानकर उसे याद करने के लिए बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था।

दयानन्द ने अस्पृश्यता व अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके अपहत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत की स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन-जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र-संगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से था।

– फ्रेंच लेखक राम्यॉं रोलॉं

हमें वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहन देने और यह सिद्ध करने में कि मूर्तिपूजा वेदसम्मत् नहीं है, स्वामी दयानन्द के महान् उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। आर्यसमाज के प्रवर्तक वर्तमान जाति-भेद की मूर्खता और उसकी हानियों के विरुद्ध अपने अनुयायियों को तैयार करने के अतिरिक्त यदि और कुछ भी न करते तो भी वह वर्तमान भारत के पड़े नेता के रूप में अवश्य सम्मान पा जाते।

– जर्मन प्रोफेसर डॉ. विण्टरनीज

मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने में अशक्त हैं। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य-संग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने

हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात् कर्मवीर योद्धा समझकर उनका आदर करता हूँ। उनका जीवन राष्ट्र-निर्माण के लिए स्फूर्तिदायक, बलदायक और माननीय है।

दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अत: में राष्ट्रवीर समझकर उनकी वन्दना करता हूँ। **–साधु टी.एल. वास्वानी**

स्वामी दयानन्द नि:सन्देह एक ऋषि थे। उन्होंने अपने विरोधियों द्वारा फेंके गये ईट-पत्थरों को शान्तिपूर्वक सहन कर लिया। उन्होंने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह मरकर भी अमर है। ऋषि का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त करने और जाति-बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। ऋषि का आदेश है- आर्यावर्त, उठ जाग! समय आ गया है, नये युग में प्रवेश कर, आगे बढ़!

–पाल रिचर्ड (प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू-धर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया, और जहाँ तक समाज-सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि वे पूर्ण अभिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था। **– प्रो. एफ. मैक्समूलर**

स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त उनके सत्यार्थप्रकाश में निहित हैं। यही सिद्धान्त वेदभाष्य-भूमिका में हैं। स्वामी दयानन्द एक धार्मिक सुधारक थे। उन्होंने मूर्तिपूजा से अविराम युद्ध किया। **–सर वेलण्टाइन चिरौल**

आर्यसमाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धान्त दिया। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है.....।

– ब्रिटेन के (स्व.) प्रधानमन्त्री रेमजे मैकडॉनल्ड

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी उन्हें देवता-तुल्य जानते थे, और वह निस्सन्देह इसी योग्य थे। वह इतने विद्वान् और अच्छे आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान-पात्र थे। उनके समान व्यक्ति समूचे भारत में इस समय कोई नहीं मिल सकता। अत: प्रत्येक व्यक्ति का उनकी मृत्यु पर शोक करना स्वाभाविक है।

–सर सैयद अहमद खाँ

मेरी सम्मति में स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगत्-गुरु और सुधारक थे।

–मि. फाक्स पिट् (जनरल सेक्रेटरी, मॉरल एजूकेशन लीग, लण्डन)

स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो उसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता है। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया, उससे कहीं अधिक आर्यसमाज ने पंजाब और संयुक्तप्रान्त में किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्यसमाजी है। स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। संगठन-कार्यों के सामर्थ्य और प्रयास की दृष्टि से आर्यसमाज अनुपम संस्था है।

–श्री सुभाषचन्द्र बोस

उनकी मृत्यु से भारत-माता ने अपने योग्यतम पुत्रों में से एक को खो दिया।

–कर्नल अल्कॉट (थियोसॉफिकल सोसाइटी के प्रेजीडेण्ट)

स्वामी दयानन्द सरस्वती राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भारत का एकीकरण करना चाहते थे। भारतवासियों को राष्ट्रीयता के सूत्र में ग्रथित करने के लिए उन्होंने देश को विदेशी दासता से मुक्त करना आवश्यक समझा था।..

–श्री रामानन्द चटर्जी (सम्पादक 'मॉडर्न रिव्यु')

जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायगा तो नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायेगा।

–सर यदुनाथ सरकार

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद में मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्तव्य-पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।

– पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्सन्देह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वह सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे। **– रेवरेण्ड सी. एफ. एण्डरूज**

इसका श्रेय केवल स्वामी दयानन्द को ही है कि हिन्दू लोग आधी शताब्दी में ही रूढ़िवाद और पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा छोड़कर एक अत्यन्त शुद्ध ईश्वरवाद को मानने लगे हैं।

– प्रिंसिपल एस. के. रुर्द

महर्षि दयानन्द ने भारत और संसार-मात्र की जो सेवा की है, उसे मैं

भली-भाँति जानता हूँ। वह भारतवर्ष के सर्वोत्तम महापुरुषों में से थे। स्वामी जी ने मातृ-भूमि की सबसे बड़ी सेवा यह की है कि उसमें जातीय शिक्षा का विचार पैदा कर दिया है।

– श्री. जी. एस. अरुण्डेल

ऋषि दयानन्द ने हिन्दू-समाज के पुनरुत्थान में इतना अधिक हाथ बटाया कि उन्हें १९वीं शताब्दी का प्रमुखतम हिन्दू समझा जायेगा।

–श्री तारकनाथ दास एम.ए., पी.एच.डी. (म्युनिख)

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के उन धार्मिक महापुरुषों में से एक हैं, जिनका गुणानुवाद करने में ही जीवन समाप्त हो सकता है।

उन्होंने मन, वचन और कर्म की स्वतन्त्रता का सन्देश दिया तथा मानव-मात्र को समानता का उपदेश दिया। वह अपने जीवन और मृत्यु में महान् ही रहे।

–श्रीमती सरलादेवी चौधरानी

महर्षि दयानन्द भारत-माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदैव चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत-माता के उन सपूतों में से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना ही अभिमान किया जाय थोड़ा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, परन्तु स्वामी उन सबसे बढ़कर थे।

–खदीजा बेगम एम.ए.

ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से हिन्दुस्तानियों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बाँधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है। १९वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है, उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुँचा है।

– पीर मुहम्मद यूनिस

स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए' का नारा लगाया था।... आर्यसमाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएँ हैं और उस महान् पुरुष के लिए जिसका आप आर्य आदर करते हैं, मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।

–श्रीमती एनी बेसेंट

स्वामी दयानन्द जी पर संकीर्णता का दोष लगाना भ्रमात्मक और मिथ्या है।... उनकी शिक्षाओं का प्रमुख लक्ष्य एकता रहा और इस्लाम का आतंक हिन्दुओं को जाति-भेद की उपेक्षा करके संगठित होने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। उनके प्रयत्नों का आर्य या हिन्दू एक जाति और वेदों का आदर्श 'पारस्परिक एकसूत्रता' के साधन बन गये।

–श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर

पृष्ठ ७ से आगे....

इस प्रसंग को समाप्त कर महर्षि ने आत्मा की जागृत, स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का वर्णन किया- ''स्वप्नावस्था वह है जिसमें वह उच्चावच योनियों की रचना करता है। कभी देवभाव को प्राप्त होता है तो कभी दानवादि नीच योनियों को प्राप्त कर लेता है। मन से ही वह नाना स्त्री, पुत्र, मित्र आदि के साथ आनन्द और हर्ष मनाता है। कभी उसे आनन्द और हर्ष की अनुभूति होती है तो कभी वह भयाक्रान्त हो जाता है। इस स्वप्नावस्था के पश्चात् उसे प्रगाढ़ निद्रा आ जाती है। शरीर के साथ मन भी निश्चल हो जाता है। कहते है कि ऐसी प्रगाढ़ नींद में सोए हुए किसी आदमी को अचानक झिंझोड़कर नहीं जगाना चाहिए। ऐसा करने से उसकी शारीरिक क्षति भी हो सकता है। स्वप्नावस्था भी एक प्रकार की जागृतावस्था ही है, क्योंकि उस स्थिति में भी वह उन्ही अनुभवो को प्राप्त करता है, उन्हीं वस्तुओं को देखता है जिन्हें वह जागृत या प्रत्यक्ष दशा में देखा करता है। अन्तर इतना ही है कि स्वप्न में यह अनुभव मानसिक- मन से उत्पन्न होते है।'' राजा जनक महर्षि के इस विवेचन से प्रसन्न हुए और उन्हें सहस्त्र गौवे भेंट-स्वरूप दी और निवेदन किया कि इस उपदेश को जारी रखें।

अब महर्षि ने सुषुप्ति-दशा का प्रवचन किया- ''यह स्थिति वह है जब आत्मा किसी भी विषय या अनुभूति से नहीं बँधता। यही आत्मा की असंगावस्था है। इसी अवस्था में उसे परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिए सांख्यदर्शन-प्रणेता ने समाधि, और मोक्ष को ब्रह्मरूपता कहा है। किन्तु सुषुप्ति-अवस्था भी कोई स्थायी दशा नहीं है। जब सुषुप्ति की स्थिति भी समाप्त हो जाती है, तब मनुष्य पुन: या तो स्वप्नावस्था में पहुँचकर उसी प्रकार अपने द्वारा ही निर्मित कल्पनालोक में विचरण करने लगता है अथवा निद्रा त्यागकर जागृतावस्था में आ जाता है।'' राजा महर्षि द्वारा प्रस्तुत इस विवेचन से प्रसन्न हुआ। उसने पुन: याज्ञवल्क्य को हजार गौवे देने की घोषणा की।

महर्षि ने विषय का उपसंहार करते हुए कहा- ''जीव इसी प्रकार क्रमश: जागृत, स्वप्न और सषुप्ति अवस्थाओं में यथेच्छ जाता-आता रहता है।'' उन्होंने एक उदाहरण दिया-'' जैसे किसी नदी या सरोवर में रहनेवाला महामत्स्य नदी के कभी इस कूल तक आता है तो कभी दूसरे कूल पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार यह पुरुष भी कभी जागृत तो कभी स्वप्न की अवस्था में आता है और जाता है। अथवा, जैसे एक गरुड़ या बाज विस्तीर्ण आकाश में सर्वत्र उड़ता है, अन्तत: थककर, अपने दोनों पंखों को सिकोड़कर पुन: घोंसले में आ जाता है, उसी भाँति यह आत्मा भी कभी जागृत में तो कभी स्वप्न में आ-जाकर महान् श्रान्त-भाव का अनुभव करता है। अन्ततः सुपुप्तिरूपी नीड़ की शरण में आता है। परमात्मा उसे सुख की नींद सुलाकर दिव्यानन्द का अनुभव कराता है। उस अवस्था में न तो कोई कामना होती है और न कोई स्वप्नजनित भय या उद्वेग का भाव ही होता है। सुषुप्ति वस्तुत: मोक्ष का एक लघु संस्करण ही है।''

सब पाशों से मुक्त होकर हम सुकृत के लोक में चले जाएँ

आचार्य प्रियव्रत

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान्
य उत्तमा अधमा वारुण ये।
दु:श्वप्न्यं दुरितं नि: ष्वास्म-
दथ गच्छे सुकृतस्य लोकम्॥४॥

अर्थ- **(वरुण)** हे वरणीय भगवान्! **(अस्मत्)** हमसे **(सर्वान्)** सब **(पाशान्)** बन्धनों को **(प्रमुञ्च)** छुड़ा दे **(वारुणा:)** तुझ वरुण द्वारा बनाये हुए **(ये)** जो **(उत्तमा:)** उत्तम और **(ये)** जो **(अधमा:)** अधम, बन्धन है **(दु:ष्वप्न्यम्)** दुष्ट स्वप्नों में होनेवाले **(दुरितम्)** पाप को **(अस्मत्)** हमसे **(नि:ष्व)** दूर भगा दे **(अथ)** पापरहित होने के अनन्तर **(सुकृतस्य)** सुकृत के **(लोकम्)** लोक को **(गच्छेम)** हम प्राप्त होवें।

गत मन्त्रों में पाश-विमोचन के लिए भगवान् से जो प्रार्थना हो रही थी, वही इस मन्त्र में भी हो रही है। मन्त्र का उपासक पाप-पाशों से तंग आ गया है। वह उन्हें काट देना चाहता है इसलिए वह आतुर-भाव से बार-बार भगवान् से इन्हें काट देने की प्रार्थना कर रहा है। वह बार-बार भगवान् से प्रार्थना कर रहा है कि हे प्रभो! मेरे सब प्रकार के बन्धनों को तोड़ने में मेरी सहायता कीजिए। कोई भी पाप-पाश मेरे साथ चिपटा न रहने दीजिए। उत्तम, अधम सब प्रकार के पाशों को अब तो तोड ही दीजिए। मन्त्र में उत्तम और अध्यम के ग्रहण से मधम का अध्याहार स्वयं ही कर लेना चाहिए।

इस मन्त्र की पाश-विमोचन् की प्रार्थना में प्रसंग से एक प्रकार के पापों की ओर और निर्देश कर दिया गया है। वे पाप हैं स्वप्न में हमारे मनों में उठनेवाले अपवित्र विचार। बहुत बार हम प्रयत्न से अपनी ऐसी अवस्था कर लेते हैं कि जागृति की अवस्था में दिनभर हमारे मनों में कोई अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होता, परन्तु रात को सोने के समय स्वप्नों में हमारे मनों में अपवित्र विचार आया करते हैं। हम प्राय: स्वप्नों में उठनेवाले इन विचारों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। हम समझते रहते हैं कि दिनभर हमारे मन में कोई बुरा विचार नहीं उठता और न ही दिनभर कोई बुरा काम हम करते हैं। यदि स्वप्न में कोई अपवित्र विचार हमारे मन में आ जाते हैं तो उससे हमारा क्या बिगड़ता है। ऐसा समझकर हम स्वप्न में उठनेवाले उन अपवित्र विचारों को रोकने की चेष्टा नहीं करते हैं, परन्तु ऐसा समझना हमारी भूल होती है। स्वप्न के अपवित्र विचार संयम के, ब्रह्मचर्य के क्षेत्र में तो तत्काल हानि पहुँचाते है। पवित्रता के दूसरे क्षेत्रों में भी थोडी देर बाद उनका प्रभाव होने लगता है। स्वप्न में कुछ काल तक निरन्तर अपवित्र विचार उठते रहने से हमारी पवित्रता की भावना ढीली पड़ने लगती है और इसके परिणामस्वरूप हम जागृत् में भी अपवित्र विचार सोचने और अपवित्र आचरण करने लगते हैं। स्वप्न में चोरी, झूठ आदि का आचरण करते रहने पर हमारे जाग्रत् जीवनों में भी इन अपराधों के आ घुसने की सम्भावना बनी रहती है। फिर स्वप्नावस्था के विचार तो हमारे जागृत विचारों की मूर्तिमात्र हुआ करते हैं। स्वप्नावस्था के हमारे अपवित्र विचार इस बात की सूचना देते हैं कि दिन में जागने की अवस्था में भी वे अपवित्र विचार हमारे मन में कभी-न-कभी छिपकर आ घुसते हैं। होता यह है कि हमें याद नहीं रहता है कि दिन में किस समय कोई अपवित्र विचार हमारे मन में उठा था। इस याद न रहने से हम समझ लेते हैं कि जागते में हमारे मन में कोई अपवित्र विचार उठता ही नहीं है। ध्यान से पड़ताल करने पर हमें पता लग जाएगा कि दिन में जागते हुए भी कितने ही अपवित्र विचार हमारे मन में उठते रहते हैं। स्वप्न में उन्हीं की नये-नये रूपों में आवृत्ति हुआ करती है, इसलिए जिसके मन में स्वप्नावस्था में अपवित्र विचार उठते रहते हैं उस व्यक्ति को समझ लेना चाहिए कि उसके मन में अभी अपवित्रता बसी हुई है, उसके मन ने अभी पापों को त्यागा नहीं है। उस व्यक्ति को भगवान् की संगति में- उपासना में बैठकर गन्दे स्वप्नों के रूप में प्रकट होनेवाले अपने मन के पापों को दूर करने का यत्न करना चाहिए।

जब हमारे मन में कभी स्वप्न में भी कोई अपवित्र विचार नहीं उठेगा तब हमें समझना चाहिए कि हमारे जीवन में पवित्रता आई है।

जब हम स्वप्न समय के पापों को भी त्याग देंगे तब हमें समझना चाहिए की हम निष्पाप हो गये हैं। इस प्रकार निष्पाप होने का फल यह होगा कि फिर हमसे सदा सुकृत ही होंगे, हमसे सदा पवित्र कर्म ही होंगे। कुकृतशाली होने पर हमें वह लोक प्राप्त होगा जो पुण्य से मिला करता है। वह लोक है सुख का लोक- आनन्द का लोक। सुकृत्यशाली होने पर हम जब तक इस लोक में रहेंगे तब तक भी सदा सुखी रहेंगे और जब हमारे सुकृत्यों से, पुण्यों से, प्रसन्न होकर परमेश्वर हमें अपना रूप दिखा देंगे और हमें मोक्ष की अवस्था में, ब्रह्मलोक में ले-जाएँगे तब तो हम और भी अवर्णनीय आनन्द की स्थिति में रहेंगे।

हे आत्मन्! तेरी वह अवस्था कब आएगी जब स्वप्न में भी तेरे भीतर अपवित्र विचार नहीं उठेंगे? इस पूर्ण पवित्रता की अवस्था को प्राप्त करके तू कब सुकृत के लोक को प्राप्त करने का अधिकारी बनेगा?

❑❑❑

मानवोचित गुणों की पुकार

डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालंकार

आत्मोद्गार

नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् (३।३१।१९)
ग्रहण करने के लिए मैं पुरातन को भी नवीन रूप दे देता हूँ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्त (३।३३।४)
आगे बढ़ने के लिए प्रवृत्त हमारे उद्योग को कोई रोक नहीं सकता।
प्रर्यसा यामि रत्नम् (३।५४।३)
परिश्रम करके मैं रत्न प्राप्त करता हूँ।
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः (३।५५।३)
मेरी कामनाएँ बहुत से विषयों में अग्रसर हो रही हैं।
अद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः (४।२।१५)
तेजस्वी होते हुए हम धन से भरी पर्वत की खान को तोड़ लायें।
एतोन्व१द्य सुध्यो ३ भवाम् (५।४५।५)
आओ, हम सब सुधी बनें।
प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः (५।४५।५)
हम दुर्गतियों को पूर्णतः ध्वस्त कर दें।
आ सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् (७।३६।४)
मैं श्रेष्ठ कर्म और श्रेष्ठ ज्ञान वाले का वरण करूँ।
मा कर्म देवहेळनं तुरासः (७।६०।८)
शीघ्रता में हम देवजनों के प्रति अपराध न कर बैठें।
प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन् (७।७६।२)
मुझे देवयान मार्ग दीख गये हैं।
मा भू म निष्ट्या इव (८।१।१३)
हम नीचों के सदृश न हों।
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभं (८।६।१०)
मैंने पिता प्रभु से सत्य की मेधा को पा लिया है।
अहं सूर्य इवाजनि (८।६।१०)
मैं सूर्य के समान हो गया हूँ।
अजैष्माद्यासनाम (८।४७।१८)
आज हम विजयी हुए हमने प्राप्तव्य को पा लिया है।
अभूमानागसो वयम् (८।४७।१८)
हम निष्पाप हो गये हैं।
अपाम सोमममृता अभूम (८।४८।३)
हमने ब्रह्मानन्द का पान कर लिया है, हम अमर हो गये हैं।
अगन्म ज्योतिरविदाम देवान (८।४८।३)
हमने ज्योति पा ली है, दिव्य गुणों को पा लिया है।
किं नूनमस्मा न्कृणवदरातिः (८।४८।३)
शत्रु हमारा क्या बिगाड़ सकता है?
अप त्या अस्तुरनिरा अमीवा (८।४८।११)
दुर्भिक्ष और रोग हमसे दूर हो गये हैं।
नहि मे रोदसी उभे अन्य पक्षं चन प्रति (१०।११९।७)
ये द्यावापृथिवी मेरे एक पासे के बराबर भी नहीं है।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि (१०।३६।५)
हम जीवन के लिए सुप्रकाशमय चिन्तन करें।
अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनम् (१०।४८।५)
मै वीर हूँ, धन को कभी हार नहीं सकता।
न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन (१०।४८।५)
मैं कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।
अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः (१०।११९।१२)
मैं गगन में उदित महातेजस्वी सूर्य हो गया हूँ।
अयजियाद्यज्ञिय भागमेमि (१०।१२४।३)
अयज्ञिय को छोड़ कर यज्ञिय भाग प्राप्त करता हूँ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम (१०।१२४।६)
हे मेरे मन, निकल कर आ जा, मैं और तू मिलकर पाप का संहार करें।
महां नमन्तां प्रदिशश्चतस्त्रः (१०।१२८।१)
मेरे सम्मुख चारों दिशाएँ झुक जाये।
आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु (१०।१२८।४)
मेरे मन का संकल्प पूरा हो।
अजैष्माद्यास नाम (१०।१६४।५)
हम विजयी हो गये हैं, हमने प्राप्तव्य को पा लिया है।
अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः (१०।१६६।२)
मैं शत्रुहन्ता हूँ, इन्द्र के समान अहिंसित और अक्षत हूँ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः (१०।१६६।२)
ये सब शत्रु मेरे पैरों के नीचे स्थित हैं।
अभिभूर हमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना (१०।१६६।४)
मैं विजेता होकर सर्वक र्मक्षम तेज के साथ आ गया हूँ।
आवश्चित्तमा वा व्रतमा वोऽहं समितिं ददे (१०।१६६।४)
तुम्हारे चित्त को, कर्म को और तुम्हारी समिति को मैं अपने वश में कर लूंगा।
आ वो मूर्धानमक्रमीम् (१०।१६६।५)
मैंने तुम्हारे सिर पर आक्रमण कर दिया है।
अधस्पदान्म उद्वदत (१।१६६५)
मेरे पैरों के नीचे रह कर बोलो।

❒❒❒

धर्म और सत्य

डॉ. राम अवतार अग्रवाल

सत्य धर्म का पर्याय और धर्म सत्य का पर्याय है। अत: जहां सत्य है, वहां धर्म है। सत्य के अभाव में धर्म अर्थहीन है। सत्य जब व्यक्ति के आचरण से अभिव्यक्त होता है जब उसी का नाम धर्म है। जैसे सत्य सत्य है, वैसे ही धर्म धर्म है। धर्म का सम्बन्ध किसी आस्था, विश्वास या किसी भी मत से नहीं है।

सत्य-असत्य लौकिक शब्द हैं। लौकिक जगत् वह दर्पण है, जिसमें मनुष्य अपना असली चेहरा देख सकता है। सत्य वह अंतिम सत्ता है, जहां से अनंत यात्रा आरंभ होती है। यह एक ऐसा प्रथम पग है जिससे ब्रह्म व ब्रह्माण्ड दर्शन का अभियान आरंभ होता है। सत्य ही जीवन का आरंभ और अंत है। इसके अतिरिक्त सत्य एक ऐसी दिव्य सत्ता है, जो परिस्थिति निरपेक्ष है। वह अपरिवर्तनीय है। परिस्थिति बदलती है, मौसम बदलते हैं, परन्तु सत्य नहीं बदलते। न बदलने के कारण ही सत्य, कहलाता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति में जो क्रियायें सतत तथा समान रुप से घट रही हैं, वे सत्य हैं।

सूर्य का अपने केन्द्र पर निरंतर घूमते रहना, पृथिवी का भ्रमण करते हुए, सूर्य का एक वर्ष में एक चक्कर पूरा करना तथा मौसम का समय पर परिवर्तन होना आदि ऐसी प्राकृतिक घटनाये हैं, जो अपरिवर्तनीय होने से सत्य हैं। इसके अतिरिक्त सृष्टि प्रलय, जीवन और मृत्यु जिन नियमों के अंतर्गत होते हैं, वे सब सत्य हैं। प्राकृतिक क्रियायें या सभी भौतिक परिवर्तन जिसके द्वारा हो रहे हैं, वे ही सत्य नियम हैं, जिन्हें जानना ज्ञान है। नियम ज्ञान से पूर्व विद्यमान रहते हैं। अत: सत्य या ऋत नियम जो पूर्व या सनातन काल से वर्तमान हैं, उन्हें ज्ञात करना ही ज्ञान है। अभी भी प्रकृति में ऐसे अनेक सत्य नियम क्रियाशील हैं, जिन्हें हम नहीं जानते। अत: जिन्हें हम नहीं जानते, ये नियम हमारे लिए तब तक अज्ञात या अज्ञान हैं, जब तक हम उन्हें ज्ञात नहीं करते।

इस प्रकार ज्ञान, अज्ञान में बदलता है। ऐसे ही जब तक सत्य को नही जानते, तब तक वह भी असत्य है। जानने के पश्चात् असत्य, सत्य और अज्ञान, ज्ञान में बदलता है, अथवा सत्य का अभाव असत्य और ज्ञान का अभाव है। वैसे अज्ञान और असत्य की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। ये नकारात्मक शब्द हैं। किन्तु ये बहुत महत्वपूर्ण हैं।

जब हम नहीं थे, तब न सत्य था और न असत्य। तब पंचमहाभूत, महान्धकार में समाये हुए थे। तब अन्धकार ही अन्धकार था।

ब्रह्म चेतन है तथा प्रकृति जड़ प्रकृति पर चेतन क्रिया से जो ऋत नियम व्यक्त होते हैं वे ही सत्य हैं। ऋत नियम सृष्टि के वे प्रथम सत्य है, जो ब्रह्म के तप या उसकी चेतना से पैदा होते है-

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत्।

– अथर्ववेद ४.३५.१

इसके अतिरिक्त ईश्वर के श्रम व तप से जो धन ज्ञान एवं ऋत नियम उत्पन्न होते हैं, वे ही सृष्टि को धारण करते हैं-

श्रमेण तपसा सुष्टा ब्रह्मणा वित्ततें श्रिता – अथर्ववेद १२.५.१

ऋग्वेद के अनुसार भी समस्त सत्य या ऋत नियम ब्रह्म के तप से ही पैदा होते हैं-

ऋतं चा सत्यं चभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। – ऋग्वेद १०.१९०.१

इस प्रकार अपनी चेतना शक्ति या तप से जड़ पदार्थ को पकाने वाला परमात्मा ही समस्त सत्यों या ऋत नियमों का आत्मा, आधार या आदि केन्द्र है-

उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानभि सं विवेश। –यजुर्वेद ३२.११

परिणामत: सत्य जहां चेतना से अभिव्यक्त हुआ है, वहां सत्य- असत्य के भेद को उसी ने पृथक्-पृथक् करके सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा स्थापित की है-

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापति:।
अश्रद्धामनृतेऽद्धाच्छद्धा सत्ये प्रजापति:।।

सत्य में श्रद्धा तथा असत्य में अश्रद्धा की स्थिति के प्रति श्रद्धा और झूठे-बेईमान मनुष्य के प्रति अश्रद्धा और घृणा पैदा होती है।

जहां सत्य में चेतना तथा ज्ञान स्थित रहता है, वहां असत्य में जड़ता और अंधकार। सत्य में असत्य वैसे ही स्थित है, जैसे प्रकाश में अंधकार और ज्ञान में अज्ञान। किन्तु जो सुविज्ञान वेता या सत्य नियमो मे आविष्कारक हैं, वे ही असत्य को सत्य से पृथक् करके, सत्य की स्थापना करते हैं अथवा व श्रेष्ठ सत्याचारियों या वैज्ञानिकों द्वारा ही सम्भव है-

सुविज्ञानं चिकितुष जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदुजीयस्तदित्सोमोऽ वति हन्त्यासत्।।

सत्य और शक्तियां:–

सत्य में सभी दिव्य या वैज्ञानिक शक्तियां निहित हैं। ऋत नियम सृष्टि के कारण हैं और उन्हीं से वह धारण की गई है।

ब्रह्माण्ड में भूमि, अन्तरिक्ष, सूर्य, रात-दिन, द्यौ और सोम आदि सभी कुछ अपने-अपने केन्द्र में स्थित होकर सत्य के आश्रित हैं-

सत्येनोत्तभिता भूमि: सूर्येणोत्तभिता द्यौ:।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिक श्रित:।।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद १०.३६.२ के अनुसार सत्य शक्तियों या नियमों के आश्रित होकर ही रात-दिन होते हैं, सौर संसार उत्पन्न एवं नष्ट होता है। जिनके द्वारा सब गति करते, सब दिन जल प्रवाह चलते तथा सूर्य सब दिन उदय होता है, वे ही सत्य नियम हैं।

सत्य जगत् की एकमात्र ऐसी अद्भुत सत्ता है, जिससे ज्ञान-विज्ञान की उत्पत्ति हुई है। फलत: संसार के समस्त वैज्ञानिक अथवा आविष्कारक सत्य के द्वारा ही नई-नई खोज करने में सफल हुए हैं। अत: विद्वान पुरुष या वैज्ञानिक पुन:-पुन: सत्य की ही कामना करते हैं। सत्य या ऋत नियमों की जो धारायें प्रवाहित हैं, वे पूर्व से या समानत काल से ही वर्तमान हैं। अत: वैज्ञानिक उन नियमों को जो पूर्व से विद्यमान हैं, उन्हें उनके अनुकूल होकर ही जान सकते हैं। वेदों के अनुसार सत्य में ही वह शक्ति है जिससे अज्ञान रूपी राक्षस का विनाश किया जा सकता है-

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धृयतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वी:।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं समाम्परुषस्य वृष्ण: ।।

परन्तु वैज्ञानिक सत्य का निर्माण नहीं कर सकते। वे उनकी खोज कर सकते हैं। फलत: वैज्ञानिक नियम या सत्य, मानवकृत नहीं हैं। वे सनातन काल से वर्तमान हैं। जब व्यक्ति सत्य पथ से हटकर असत्य पथ पर चलने लगता है, तब सत्य शक्तियां व नियम, मानव के नियंत्रण में नहीं रहते हैं। परन्तु जैसे ही वह सत्य की उपासना आरंभ करता है, वैसे ही वे पुन: उसे प्राप्त हो ताते हैं फलत: सत्य ज्ञान में ही वह शक्ति स्थित है जिससे दिव्य शक्तियां पुन: अभिव्यक्त होती है। वेदों के अनुसार सत्य में वे शक्तियां निहित हैं जिनके द्वारा बधिर भी सुनने लगते हैं, अथवा जो अंधविश्वासों या अंध श्रद्धा के कारण

सत्य को सुनना नहीं चाहते, या सुना हुआ अनसुना करते हैं, वे भी सत्य तकों, सत्य-प्रमाणों द्वारा सत्य को सुनने, समझने व मानने के लिए विवश होते हैं-

ऋतस्य हि शुरूध: सन्ति पूर्वीऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधान: शुचमान आयो।।

– ऋग्वेद ४.२३.८

सत्य तर्कों में अपार शक्ति स्थित है। अत: यास्काचार्य ने तर्क को ही ऋषि कहा है-

तर्के ऋषि: । निरूक्त

सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि समस्त प्राकृतिक देव सत्य पथ पर चलते हैं। अत: सत्य या ऋत नियमों के अनुशासन में रहने के कारण उनका पथ स्वस्ति, भद्र, सरल, सुलभ एवं टकराव-रहित होता है। ऋग्वेद के अनुसार जैसे सत्य पथ पर चलने से सूर्य का पथ शत्रु रहित होता है, वैसे ही सत्याचारी का मार्ग भी सुगम एवं विघ्न-बाधाओं से मुक्त होता है-

सुग: पन्था अनृक्षर आवित्यास ऋतं यते।
नात्रावखादो अस्ति व:।। –ऋग्वेद १.४१.४

सत्य में अपार शक्तियां हैं। फलत: व्यक्ति कर्म रूपी सत्य के द्वारा उन इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है, जो उसके मन में उत्पन्न होती हैं। वह सत्य से सुख-शांति, धन, ऐश्वर्य और यश-कीर्ति इत्यादि सब कुछ प्राप्त कर सकता है। जगत् में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है, जो सत्याचारी को उपलब्ध न हो।

वेदों अनुसार जहां सत्य मार्ग पर चलने से धन-वैभव मिलता है, वहां विद्वान् सत्य साधना से ब्रह्माण्ड के समस्त भुवनों के दर्शन भी कर सकते हैं।

सत्य कार्यों से व्यक्ति को जहां विश्व-व्यापी ख्याति प्राप्त होती है, वहां उसके माता-पिता तथा आचार्य का नाम इस लोक के साथ-साथ अन्य लोकों में भी प्रख्यात होता है।

इस प्रकार ब्रह्म और ब्रह्माण्ड के दर्शन का एकमात्र साधन सत्य है। सत्य, आत्मा तथा परमात्मा के सर्वाधिक निकट है अथवा उसका उद्गम स्थल वे ही हैं। इस प्रकार वह आत्मा-परमात्मा से उत्पन्न होने के कारण दोनों सत्ताओं से ओत-प्रोत रहता है। फलत: वह ईश्वर के उपरान्त विश्व में सबसे अधिक शक्तिवान है। अत: उसके बल पर मनुष्य, बड़ी से बड़ी बाधाओं और आपत्तियों के आने के बाद भी सत्य से विचलित नहीं होता। उसे मृत्यु भी सत्य-मार्ग से नहीं हटा सकती। प्रत्युत वह स्वयं उससे डरती अथवा भय भी उससे भयभीत होता हैं। वेदों ने सत्य की शक्तियों का सूक्ष्मतम विश्लेषण करते हुए कहा है कि सत्यवादी किसी से भी नहीं दबता-

ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्य१न्तरा दधे।
धर्मज्ञ या ऋतुवादी अदम्य होता है– अस्या अदाभ्य:।

–ऋग्वेद ९.७५.२

धर्म या सत्य आत्मशक्ति से युक्त है। अत: इसी के द्वारा कर्मप्रिय ईसामसीह सहर्ष सूली पर लटक गये, किन्तु उन्होंने सत्य धर्म का परित्याग नहीं किया। इसी तरह गुरु गोविंद सिंह के पुत्रों ने जीवित दीवार में चुना जाना पसन्द किया, परन्तु सत्य से विमुख नहीं हुए। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि सत्यवादी किसी शक्ति के दबाव या भय, लालच में आकर असत्य को स्वीकार नहीं करते, वे अजेय होते हैं। अत: उपनिषद्कारों को यह घोषणा करनी पड़ी कि सत्य सदैव विजयी होता है, असत्य नहीं-

सत्यमेव जयते नानृतं। सत्येन पन्था विततो देवयान:।

–मुण्डकोपनिषद् ३.१.६

धन-अन्न, फल-फूल, सोना-चांदी, हीरे-मोती आदि मनुष्य को जो कुछ चाहिए, वह सत्य द्वारा प्राप्त होता है। अत: वेदों के अनुसार उसे धन सत्य पथ से ही उपार्जित करना चाहिए।

परि चिन्मर्तो द्रविण ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेतू।

– ऋग्वेद १०.३१.२

उसे अवैध धंधों या अवैद्य पथ से अवैध या अपवित्र धन नहीं कमाना चाहिए। इसके अतिरिक्त वर-वधू सहित पूरे परिवार को मिलकर सत्य मार्ग से ही धन कमाना चाहिए।

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु। –अथर्ववेद १४.१.३१

क्योंकि पवित्र धन से ही यश-कीर्ति, समृद्धि और वैभव प्राप्त होता है। फलत: जब सत्य से ही सब कुछ प्राप्त होता है, तब सदैव सत्य का ही कथन करना चाहिए। (अथर्ववेद ४.७.७, १४.१.४१, ४.७.७, ऋग्वेद ४.२३.१०, यजुर्वेद ३९.४)।

इसके अतिरिक्त चन्द्रमा के समान शांति या प्राण वायु के समान जीवन सत्य से ही मिलता है। (यजुर्वेद १.३.४-५)।

ब्रह्म की भाँति सूक्ष्म तरंगों में उसके ऋत नियम व्याप्त रहते हैं। फलत: सत्यवादी कहीं भी किसी भी स्थिति में क्यों न हो, वह सत्य द्वारा सर्वत्र चमकता है। इसके अतिरिक्त सत्याचरण के कारण सत्यवादी का स्वभाव ऋतमय हो जाता है। वह जहां भी जब भी जो-जो कथन करता है, वे सत्य होते हैं। (ऋग्वेद ९.११३.४.)।

उपर्युक्त सत्य का योग दर्शन में उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि सत्य साधना करने से बुद्धि ऋतमय हो जाती है- **ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।**

– पतंजलि योग दर्शन १.४८

इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार सुख-शांति तथा आनंदमय जीवन के लिए सदैव सत्य ही बोलना चाहिए-

सत्यं वद, धर्म चर, स्वाध्यायान्मा प्रमद:।

–तैत्तिरीयोपनिषद् १.११.१

परन्तु सत्यवाणी के साथ-साथ इच्छा या कामनायें भी सत्य होनी चाहिए-

सत्यामाशिष कृणुता। – ऋग्वेद १०.६७.११

जब मनुष्य के तन-मन, वचन एवं कर्म में सत्य धर्म स्थित हो जाता है, तब परमात्मा के जितने भी वरदान, आशीर्वाद अथवा उसकी जितनी भी दिव्य शक्तियां हैं, वे मनुष्य को स्वत: प्राप्त होती है-

स्पृष्टे सत्या इहाशिष:। – ऋग्वेद ८.४४.२३

सत्य धर्म उस आत्मा या ब्रह्म सत्ता से युक्त रहता है, जिसके अभाव से समानता स्थापित नहीं हो सकती। समानता के बिना गरीब को विकास के समान अवसर प्राप्त नहीं हो सकते। प्राय: उन्हें धन या आय के प्रभाव से विकास के समान अवसरों से वंचित कर दिया जाता है। ऐसे ही सबल राष्ट्र निर्बल राष्ट्र की उन्नति में बाधायें उत्पन्न करते हैं। अत: बलवान मनुष्य कमजोर व्यक्तियों का शोषण न कर सके, इसलिए सत्य धर्म द्वारा विश्व में समानता की स्थापना करना आवश्यक है। जैसे सत्य का संबंध आत्मा-परमात्मा से है, वैसे ही धर्म का सम्बन्ध भी आत्मा-परमात्मा से है। अत: उन्हीं की सत्ता से असमानता उत्पन्न होने वाले अत्याचारों को रोका जा सकता है।

आत्मवान पुरुष श्रम, तप, ज्ञान तथा दक्षता आदि का सदैव आदर करता

है। फलत: ऐसे व्यक्ति योग्यता की पूजा करते हैं। किन्तु अयोग्यता की उपासना वे मनुष्य करते हैं, जो आत्मा को नहीं वरन् शरीर को ही सत्य मानते हैं। शरीर से आत्मा अधिक व्यापक और उससे परमात्मा और अधिक व्यापक है।

अत: जो व्यापक सत्य या धर्म को धारण करता है, वह न तो स्वयं अत्याचार करता और न अन्यों का अन्याय सहन करता है। पाप-अपराध वे व्यक्ति करते हैं, जो शारीरिक सुख या अल्पता को सर्वोपरि मानते हैं। मनुष्य जब किसी का शोषण करता है, तब उसके मन में भौतिक सुख के अल्प भाव प्रभावी रहते हैं। भौतिक सुख प्राप्त करना अपराध नहीं है, परन्तु अल्पता के कारण जब अन्यों को दु:ख देकर सुख भोग किया जाता है, तब वही अपराध है और वही अधर्म है। सत्य व्यापक और असत्य अल्प है। अत: व्यापकता के कारण सुख का उदय सत्य से ही होता है। सुख और सत्य एक-दूसरे के पर्याय है। अत: जहां सत्य है, वहां सुख है। धर्म में न्याय स्थित है और न्याय में समानता का निवास है। समानता तथा व्यापकता आत्मवाद और ब्रह्मवाद का स्वभाव है। पलत: सत्य-धर्म या आत्म या ब्रह्म सत्ता की स्थापना के उपरान्त जगत् में अभाव, अन्याय, अज्ञान और असुरक्षा जनित दु:ख उत्पन्न नहीं हो सकते। अत: जहां अन्याय-अन्याय-अपराध नहीं होते वहां न्याय और न्यायालय की भी जरूरत नहीं होती। तब न दंड की आवश्यकता पड़ती और न दंड-विधान की और समाज, सत्य धर्म से शासित होता है। इतिहास साक्षी है जब भारत में सत्य के अनुसार शासन चलता था, तब प्रत्येक नागरिक सत्याचारी था। इस संबंध में यूनान और चीन के राजदूतों, मेगस्थनीज तथा ह्युनसांग ने तत्कालीन भारत के संबंध में लिखा है कि भारतीय नागरिक झूठी गवाही देकर, मृत्यु दंड से बचने का प्रयत्न नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त पर धन की चोरी करना उनकी प्रकृति में नहीं था। वे परशोषण की कल्पना से भी डरते थे। यही कारण है कि सत्य प्रिय केकय कुमार राजा अश्वपति ने ऋषियों के समक्ष घोषणा करते हुए यह कहा था कि मेरे राज्य में न तो कोई चोर है, न कोई अदाता, न मद्यप, न मूर्ख तथा न कोई स्वैरी (परस्त्रीगामी) है। फलत: जब कोई स्वैरी नहीं है, तब स्वैरिणी कैसे हो सकती है? (छान्दोग्योपनिषद् ५.११.५)।

सत्य से व्यक्ति तथा समाज दोनों सदाचारी बनते हैं। दूसरे शब्दों में सदाचार सुचरित्र का पर्याय है। अत: जगत् में सुचरित्रवान पुरुष रहते हैं, वहां अपराध नहीं हो सकते। जहां पाप अपराध नहीं होते, वहां दु:ख-कष्ट नहीं होते। फलत: सत्य की प्रतिष्ठा से कोई भी मानव अन्यों के साथ अन्याय नहीं कर सकता, क्योंकि सत्य सत्ता जो सर्वोपरि है, वह अन्याय करने से रोकती है।

इस प्रकार सत्य मानव जाति का परम मित्र है। परन्तु गरीबों का तो यही एकमात्र सहारा है। मानव जाति का यदि कोई, सनातन संविधान है, तो वह सत्य धर्म ही है। अस्तु राजगद्दी पर प्रतिष्ठित होने के पूर्व राजा लोग सत्य धर्म की रक्षा के लिए शपथ पूर्वक वचनबद्ध होते थे। सत्य में सर्वात्मा स्थित है। अत: सत्य द्वारा ही सर्वार्थ सुख के आदर्श को उपलब्ध किया जा सकता है। सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी पथ मत या वाद से सुखी संसार नहीं बनाया जा सकता।

सत्य में असत्य स्थित है। अत: सत्य को लेकर विवाद उठते रहे हैं तथा उठते रहेंगे। दार्शनिक जगत् में सत्य को आदि शंकराचार्य के उस कथन से विवाहद का विषय बनाया गया, जिसके अनुसार ब्रह्म सत्य तथा जगत् मिथ्या है।

सत्य में असत्य व्याप्त और असत्य में सत्य। वेदों के अनुसार सत्य-असत्य परमात्मा द्वारा पृथक्-पृथक् किये गये हैं। (यजुर्वेद १९.७०)

इस प्रकार परमात्मा न सत्य है, न असत्य। वह दोनों से परे है। यदि वह केवल सत्य होता, तो अरबों आदमियों की दुनिया में किसी ने तो यह कहा होता कि वह यह है। उपनिषदों ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि जो यह कहता है कि मैं ब्रह्म को जानता हूँ, वास्तव में वह उसे नहीं जानता है।

यो नस्तद्वेद तद्वेव वेदेति वेद च। - केनोपनिषद् २.२

यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद स:।

अविज्ञातं विज्ञातां, विजानतामविजानताम्। -केनोपनिषद् २.३

ब्रह्म अनंत तथा चेतन है। यह सब जानते हैं। किन्तु अनंत क्या है, यह कोई जान भी नहीं सकता, क्योंकि वह किसी सत्य, संख्या, आकार-प्रकार, रूप-रंग और गंध आदि से बंधा हुआ नहीं है। फलत: उसके लिए यह कथन सार्थक है कि वह न सत्य है, न असत्या वह न प्रकाश है, न अंधकार। वह न तरंग है, न कपंन, न द्रव है, न द्रवी है, नहीं भी चलता। उसके लिए धनात्मक तथा ऋणात्मक भाषा का प्रयोग करना ही उचित है।

अनंत की किसी विशेष दृष्टिकोण के द्वारा व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि वह न तो किसी के द्वारा उत्पन्न हुआ और न विकसित। वह वर्तमान में जैसा है, वैसा ही भूतकाल में था और वैसा ही भविष्य में रहेगा। वह अपरिवर्तनीय है और अपरिवर्तनीय कभी भी ज्ञात नहीं किया जा सकता। अत: अज्ञात होने से वह सत्य-असत्य से अतीत है। वह व्यक्त तथा अव्यक्त से भी परे है।

जैसे अनंत ब्रह्म, सत्य की पहुंच से परे है, वैसे जगत् सत्य की पहुंच में होने से सत्य है। इस प्रकार अनंत के भीतर जो कुछ है, वही सत्य है। जो कुछ अंदर है, वह उसके बाहर नहीं जा सकता, और यदि कुछ बाहर है, तो वह अंदर नहीं आ सकता। वैसे अनंत के बाहर अनंत ही होता है, अन्य कुछ नहीं। ब्रह्माण्ड में जितने भी परमाणु तथा जितनी भी आत्मायें हैं, वे अनंत के अंत में हैं। अंतो के अंत, अनंत में तब से गतिवान हैं, जब से वह है।

इस प्रकार सभी अंत सत्य हैं। अत: अंतों से बना हुआ जगत् भी सत्य है। जैसे अनंत अनश्वर है, वैसे ही उसके भीतर जो अंत हैं, वे भी अनश्वर हैं। वे अविनाशी इसलिए भी हैं क्योंकि अंत का और अंत नहीं हो सकता, अथवा पदार्थ के अंतिम कण का आगे विभाजन नहीं हो सकता। ऐसे ही आत्मा जो व्यापक जीवन की अँतिम इकाई है, उसका भी अंत नहीं हो सकता। अणु-परमाणु से निर्मित जगत् तथा विभिन्न आत्माओं से युक्त समस्त जीव जो अनंत के अंतिम छोर या केन्द्र हैं, वे सब सत्य है। वे सब सत्य है, इसलिए वे बार-बार अपने वर्तमान रूप में ही उत्पन्न होते रहते हैं। जगत् तथा जीवों का जो रूप पूर्व में था, वही रूप वर्तमान में हैं-

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमधो स्व:।। –ऋग्वेद १०.१९०.३

जिस जगत् में हम रहते हैं, वह ईश्वर के गर्भ में पोषित हो रहा है, वह उसके अंदर तब से है, जब से अनंत है। अत: यदि परमात्मा सनातन तथा सत्य है, तो जगत् भी सत्य सनातन है-

सनादेव न शीर्यते सनाभि:।

–ऋग्वेद १.१६४.१३, अथर्ववेद ९.९.११

वेदों के अनुसार जीव जगत् एवं ईश्वर में से कोई भी न तो किस से पूर्व है और न पश्चात्। तीनों सनातन अथवा समकालीन हैं। तीनों साथ-साथ रहते हैं, इसलिए तीनों भाई-भाई हैं-

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यशन:।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-११ मुम्बई नवम्बर- २०१७ ‖ पृष्ठ-१६ ‖ मूल्य- रु. १/-

मार्गशीर्ष - २०७४ (२०१७) Post Date : 25-11-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति, ____________________

____

____

टिकट

तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्त्रात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्।।

-ऋग्वेद १.१६४.१

विभिन्न जीव और ईश्वर, प्रकृति रूपी वृक्ष पर मित्रवत साथ-साथ रहते हैं, इनमें से जीव मीठे-मीठे फल खाते हैं और परमात्मा कुछ नहीं खाता। (ऋग्वेद १.१६४.२०)।

इस प्रकार तीनों भाई साथ-साथ रहते हैं। अत: यदि जगत् मिथ्या है, तो ब्रह्म भी मिथ्या है। परन्तु यदि ब्रह्म सत्य है, जो जगत् भी सत्य है।

इस प्रकार जिसे हम देखते हैं, जिसे सुनते तथा जिसका अनुभव करते हैं, वे सब सत्य हैं। इसी के साथ-साथ जगत् में जो क्रिया की प्रतिक्रिया हो रही है, या जो घट रहा है अथवा जो रूपान्तर, परिवर्तन और स्थानात्नतरण हो रहा है, वह भी सत्य है। उसके अतिरिक्त संसार में जो निर्माण संहार, विनाश और विकास दिखाई देता है, वह सब सत्य है। (तैत्तिरीयोपनिषद्) २.६)।

इसके अतिरिक्त सृष्टि-प्रलय, जीवन-मृत्यु, सुख-दु:ख, हिंसा-अहिंसा तथा शांति अशांति आदि जो कुछ घटित हो रहा है और जो नहीं हो रहा है, वह सब सत्य है। जगत् में असत्य कुछ नहीं है। संसार में केवल वही असत्य है, जब मानव देखे हुए को अनदेखा, सुने हुए को अनसुना और अनुभव किए हुए को अनुभव न किया हुआ कहता है।

पंचमहापूत जिनसे जगत् बना है तथा पंचमहापूतों की पांच तन्मात्रायें, पांच इन्द्रियां पांचों के शब्द स्पर्श, रूप, रस और गंध आदि पांच विषय इत्यादि सभी सत्यों से ओत-प्रोत हैं।

इस प्रकार पंच महाभूत प्रकृति अथवा ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह सत्य है। संसार सत्य है और उसमें जो है, वह भी सत्य ही है। सत्य ईश्वरकृत है और असत्य मानव-कृत। सत्य में सर्वात्मा स्थित है। अत: सर्वमान्य क्रिया कर्म या आचरण आदि सभी सत्य होते हैं। संसार में यह सर्वमान्य सत्य है कि जो सुख-सुविधायें अथवा विकास के अवसर एक व्यक्ति को चाहिए, वे अन्यों को भी चाहिए। फलत: जिस पथ से सबको सुख प्राप्त हो, किसी को दु:ख न मिले, वह पथ सत्य पथ है और जो सत्य पथ है वह धर्म पथ है।

श्रम से धन मिलता है। अत: सभी मनुष्यों को श्रम से धन प्राप्त करना चाहिए। यह लौकिक जीवन का सर्वमान्य सत्य है। अत: लौकिक सत्यों के अनुसार जीवन यापन करते हुए व्यक्ति को सतत प्रगति पथ पर अग्रसर रहना चाहिए। क्योंकि सतत प्रगति से ही परमगति प्राप्त होती है, अथवा उस ईश्वर का साक्षात्कार होता है, जो अनंत होने से परम गतिवान है। इस प्रकार सत्य मार्ग पर चलने से ही संसार में सत्य धर्म की स्थापना संभव है। सत्य धर्म की स्थापना के बाद ही मनुष्य उस समानता का आनंद प्राप्त कर सकती है, जो केवल ब्रह्म सत्ता या आत्मा सत्ता या सत्य धर्म की सत्ता से ही उत्पन्न होती है।

❑❑❑

आर्य समाज सान्ताक्रुज के ७४ वें वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर दि. २८ जनवरी २०१८ को निम्नलिखित विद्वानों को भिन्न भिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया जायेगा।

१. **वेदांग पुरस्कार से आचार्य पं. वेदप्रकाश श्रोत्रिय जी** (दिल्ली) को राशि ६०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

२. **श्री राजकुमार कोहली वरिष्ठ विद्वान पुरस्कार** से आरदणीय स्वामी सौम्यानन्द जी (मथुरा) को राशि ३०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

३. **पं. युधिष्ठिर मीमांसक स्मृति पुरस्कार** से आदरणीय आचार्य सुदर्शनदेव जी (ओरिसा) को राशि ३०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

४. **विशिष्ट वेदांग पुरस्कार से आदरणीय आचार्य सत्यजीत** जी (अजमेर) को राशि ४०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

५. **श्री मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार-** आदरणीय श्री विनोदचन्द्र विद्यालंकार जी (हरिद्वार) को राशि ४०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

६. **वेदोपदेशक पुरस्कार** से श्रद्धेय स्वामी विश्वङ्ग जी (अजमेर) को राशि ४०,०००/- तथा शाल, श्रीफल स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

७. **श्रीमती लीलावती महाशय आर्य महिला पुरस्कार** से आदरणीय आचार्या नीरजा जी (तेलंगना) को राशि ३०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।

८. **आर्य युवक पुरस्कार** से आदरणीय ब्रह्मचारी अरुण जी (तेलंगना) को राशि ३०,०००/- तथा शाल, श्रीफल, स्मृतिचिन्ह एवं मोतीमाला भेंट कर सम्मानित किया जायेगा।